



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 37-39
www.allresearchjournal.com
Received: 26-01-2016
Accepted: 27-02-2016

अजय कुमार सिंह

एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (जर्नलिज्म)
एम. एड., एम-फिल, नेट
पता: खसरा नं. 818ए बंसल स्टोल
के पीछे बुराड़ी, दिल्ली, भारत

साहित्य और समाज का अंतः संबंध

अजय कुमार सिंह

सारांश

साहित्य सभी कलाओं की अपेक्षा समाज से अपना संबंध अधिक गहराई तक बनाए रखने में सफल होता है। साहित्य भारतीय सामाजिक जीवन को संस्कारित करता आ रहा है। आचार्य महावीर प्र. द्विवेदी के अनुसार "ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है, अर्थात् साहित्य और जीवन का गहरा संबंध है। साहित्य का आधार जीवन है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने साहित्य और समाज के सम्बन्ध को इन शब्दों में व्यक्त किया है – "साहित्य और जीवन का क्या संबंध है, यह प्रश्न आज एक विशेष प्रयोजन से पूछा जाता है। वर्तमान भारतीय समाज एक ऐसी अवस्था में पहुँच गया है जिसके नवयुवकों के लिए यह क्रांति की घड़ी है।" इसी कड़ी में बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं "प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है, जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं" इसीलिए भारतीय समाज में साहित्य, समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। साहित्य मानव संस्कृति का प्रणेता, रक्षक व वाहक है। वह व्यक्ति की सौन्दर्यात्मक व कलात्मक अभिरुचियों की पूर्ति करने वाली इकाई है। साहित्यकार का दृष्टिकोण व्यक्तिमूलक होते हुए भी विश्वात्मक होता है। उसके विचार समाज और संस्कृति से नियमित होते हैं।

विशिष्ट शब्द: दृष्टिकोण, भाववादी, मार्क्सवादी, नीलिमा, दर्पणवादी, अंतर्वस्तु, प्रतिबिम्ब, व्यक्तित्व, विशिष्टता, प्रतिनिधित्व, युगान्तकारी, विचारधारात्मक, बहुसंख्यक, साहित्यकार, पुनर्रचना, विवेचन।

भूमिका: समाज और संबंध एक जटिल अवधारणात्मक पद है। समाज और संबंध को केन्द्र में रखकर संबंधों की व्याख्या नहीं की जा सकती है। संबंधों की व्याख्या अगर जैविक आधार पर करना चाहें तो भी इसकी सही व्याख्या नहीं हो सकती जैसे-मानव-मानव का संबंध, मानव-पशु का संबंध, मानव-कृषि का संबंध आदि। सम्बन्धों की व्याख्या के लिए उसकी संरचना का अध्ययन आवश्यक है। यह दिशा सापेक्ष संरचना परस्पर जटिल अंतः क्रियाओं से निर्मित होता है। अंतःसंबंधों की व्याख्या के लिए समय और स्थान के साथ-साथ इतिहास की भी जरूरत पड़ती है। अंतः संबंध निरन्तर प्रगतिशील संरचना है।

समाजशास्त्रियों ने लेखक और समाज के संबंध को तीन रूपों में व्यक्त किया है— एक "जो व्यवस्था के अंतर्गत रचना करते हैं अर्थात् वर्तमान व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों बनाये रखना चाहते हैं। यानि प्रतिगामी या प्रतिक्रियावादी, दूसरे, स्थिति-परिस्थितियों को देखते हैं, सामाजिक त्रुटियों का अनुभव करते हैं लेकिन सुधारवादी नजरिये से उनमें परिवर्तन की बात करते हैं लेकिन तोड़ते नहीं। और तीसरे, सामाजिक विषमता और त्रुटियों का तीव्र विरोध और नष्ट करने की कोशिश करते हैं। अर्थात् क्रांतिद्रष्टा या परिवर्तनवादी।

कोई भी रचना समाज के पेट से पैदा होती है। उसका पूर्णतः भौतिक कारण होता है, अतः रचनाकार की प्रतिभा सामाजिक सूचनाओं के ग्रहण और उसे ठीक ढंग से रखने में है। ऐसे में साहित्यकार के व्यक्तित्व की चर्चा करना अनिवार्य है। प्रो. नामवर सिंह समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज की चर्चा करते हुए लेखकीय व्यक्तित्व की विस्तृत चर्चा करते हैं। "व्यक्तित्व विकासशील तत्व है.. किसी विशिष्ट का उत्थान आकस्मिक नहीं है। आकस्मिक है उसका हमारी दृष्टि में आना"। अतः सम्बन्ध ही व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करता है। अर्थात् "सामाजिक संबंधों को कम करने से व्यक्तित्व नष्ट होता है। साथ ही लेखक की प्रतिभा एक निश्चित परिस्थिति और परंपरा की उपज होती है। संबंधों की इस विविधता, घनिष्टता और जटिलता की जानकारी व्यक्तियों में विभिन्नता और विशिष्टता पैदा करती है। किसी व्यक्ति से जुड़े संबंध सूत्रों का नाम ही उसका जीवन चरित्र है। इसके निर्माण में उसकी स्वेच्छा और प्रयत्न का पूरा दखल है। दरअसल, व्यक्तित्व के निर्माण में प्रतिभा की अपेक्षा जरूरतों की भूमिका अधिक होती है। यह जरूरत किसी विशेष सामाजिक दबाव से उत्पन्न होती है यह जरूरत निम्न वर्ग के रास्ते से होकर जाती है। रचना में

Correspondence

अजय कुमार सिंह

एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (जर्नलिज्म)
एम. एड., एम-फिल, नेट
पता: खसरा नं. 818ए बंसल स्टोल
के पीछे बुराड़ी, दिल्ली, भारत

व्यक्ति चरित्र का निरपेक्ष वास्तविक आभास मिलता है। और इसी को हम समाज कहते हैं। इससे साबित होता है कि लेखक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को ही व्यक्त करता है। अभिव्यक्ति के लिए वह जिस छन्द, भाषा या रूप का आश्रय लेता है, वह स्वयं समाज की परंपरा से प्रस्तुत होता है।

अध्ययन का उद्देश्य: इस अध्ययन में समाज और साहित्य के अंतःसंबंध को समझने का प्रयास है। समाज की संकल्पना क्या है? तथा साहित्य किस प्रकार समाज का प्रतिबिम्ब है इस पर प्रकाश डालने का उद्देश्य है, ताकि लेखकीय प्रतिभा, व्यक्तित्व और साहित्य तथा समाज के अंतःसंबंध को ठीक प्रकार से समझा जा सके।

शोध पद्धति : विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि को आधार मानकर विभिन्न पुस्तकालयों से पुस्तक का अध्ययन, पत्र-पत्रिकाओं का विश्लेषण तथा शोध प्रबंधों की सहायता से जानकारी इकट्ठा करना।

मुख्य विषय: साहित्य और समाज के अंतःसंबंध को लेकर विभिन्न धारणाएँ रही हैं, किन्तु मुख्य रूप से दो धारणाओं का उल्लेख सभी विद्वानों ने किया है। प्रथम भाववादी और दूसरा मार्क्सवादी। समाज का भाववादी दृष्टिकोण साहित्य और समाज की बिम्ब-प्रतिबिम्ब या कार्य-कारण सम्बन्ध के रूप में व्याख्या करता है। यानि किसी राष्ट्र के साहित्य को ध्यान से पढ़कर यह बताया जा सकता है कि उसकी जनता किस प्रकार की थी। "उपन्यास राजमार्ग से नीचे की ओर यात्रा करनेवाला दर्पण है, कभी वह गगन की नीलिमा को प्रतिबिम्बित करता है और कभी डबरे के कीचड़ को (स्तादल)।" यद्यपि इस दर्पणवादी धारणा का खण्डन अधिकांश आलोचकों ने किया है। मैनेजर पाण्डेय ने कहा है कि "जब साहित्य का संबंध निर्धारणवादी (कार्य-कारण संबंध) से किया जाता है, तब अंतर्वस्तु का विश्लेषण ही समाज और साहित्य के संबंध को समझने का सबसे अच्छा माध्यम बनता है।" इस सन्दर्भ में प्रो. निर्मला जैन कहती हैं कि "साहित्य केवल सूचनाओं का खान नहीं है। साथ ही यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि यह किसका प्रतिबिम्ब है। ऐसे में यह भी समस्या आ जाती है कि इस प्रतिबिम्ब को समझने के लिए उस परिवेश का होना अनिवार्य होगा।" दरअसल, साहित्य का कार्य-कारण सम्बन्धवादी धारणा समाज और साहित्य के इतिहास से अलग केवल रचना को महत्व देता है। जबकि सत्य यह है कि "विशेष समय में चित्रित समाज वर्तमान समय के समाज के सदृश्य होकर भी उससे आगे का हो सकता है।" यानि दर्पणवादी धारणा के अंतर्गत यही कहा जा सकता है कि अगर साहित्य समाज का दर्पण है तो जब भी साहित्य को परखा जाएगा या पढ़ा जाएगा हमेशा वही समाज का स्वरूप निकलकर सामने आएगा जबकि ऐसा ठीक नहीं है।

कबीर साहित्य का विश्लेषण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. धर्मवीर ने किया है और तीनों ही आलोचकों के मतों में काफी अंतर है। दरअसल, समय के साथ रचना की अंतर्वस्तु भी गतिशील होती है। लेखक समय के साथ आगे का भी सोचता है। रचना के हर स्तर पर अर्थात् उसकी अन्तर्वस्तु, संरचना, शिल्प और भाषा में समाज की अभिव्यक्ति होती है। प्रो. नामवर सिंह ने कहा कि सामज और साहित्य के संबंध की चर्चा चलाते हुए अक्सर लोग इस तरह की बात करते हैं गोया समाज अपने आप साहित्य हो जाता है, जो लोग साहित्य को समाज की छाया मानते हैं, उनकी बातचीत से भी ऐसा मालूम होता है कि यह छाया अपने आप पड़ती है।" प्रो. नामवर सिंह लेखक या रचनाकार की भूमिका को स्वीकार करते हैं।

साहित्य और समाज के संबंध की मार्क्सवादी दृष्टिकोण लेखक की सामाजिक स्थिति पर रचना के बजाय स्वयं उत्पादन पक्ष पर

अधिक बल देता है। अतः विचार का केन्द्र साहित्यिक पात्र के स्थान पर संरक्षण और उत्पादन की लागत हो जाती है। अर्थात् साहित्य में केवल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रतिबिम्बों की खोज करना नहीं है, विशिष्ट साहित्यिक रचनाओं में सन्निहित मूल्यों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करना है। अतः मूल्यों की पहचान अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। इसकी पहचान के साथ वर्तमान समस्याएँ खुलकर सामने आने लगती हैं जिसमें लेखक की वर्गीय स्थिति से लेकर सार्वदेशिक रचना की प्रासंगिकता समय को गलत तरह से प्रयोग करता है। मध्यकाल का सत्य आधुनिक काल का सत्य होगा। यह जरूरी नहीं। अतः रचना में निहित तथ्य के साथ जीवित तथ्य का प्रयोग करना सार्थक होगा। तुलसीदास के रामचरितमानस में वर्णित परिवारिक ढाँचे की आज जरूरत नहीं है क्योंकि आदर्श की दुंगी बजाने से समाज परिवर्तन संभव नहीं। बस एक स्तरीकरण की प्रक्रिया हो सकती है। 'साहित्य से संवाद' पुस्तक में प्रो. गोपेश्वर ने ठीक ही लिखा है कि संतों के स्वर भेद के मध्य कबीर ने जो प्रश्नों की दीवार उठायी थी, तुलसीदास ने उस पर पानी फेर दिया। सचमुच साहित्य समाज की चेतना में सांस लेता है। इस चेतना की पहचान के लिए इतिहास की पहचान आवश्यक है। केवल सूचनाओं और जनता के हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण को चित्रित कर देना मात्र साहित्य नहीं है। साहित्य एक जरूरत है जो पीड़ा बोध से उत्पन्न होता है। यह पीड़ा बोध सामाजिक असमानताओं से उत्पन्न होता है। यह पीड़ा बोध सामाजिक असमानताओं से उत्पन्न होता है। नामवर सिंह द्वारा लिखित व्यक्तित्व, सम्बन्ध और परंपरा एवं प्रतिभा पर थोड़ी आपत्ति हो सकती है। दरअसल, जिस व्यक्तित्व को प्रगतिशील कहकर विशिष्ट निश्चित परिस्थिति और परंपरा से जोड़ा गया और फिर वह अपने संबंधों के निर्माण में स्वेच्छा का पूर्ण दखल देता है तो लगता है कि व्यक्तित्व परंपरा से होकर आता है। ऐसे में जो जीवित लोग हैं वे अपनी परंपरा की पहचान करते हैं क्योंकि उन्हें एक निश्चित परिस्थिति की पहचान है। समाज यदि एक ओर लेखक के व्यक्तित्व के माध्यम से साहित्य रूप ग्रहण करते हुए व्यक्ति की सीमा से सीमित हो जाता है तो दूसरी ओर व्यक्ति की विशिष्टता के स्पर्श से विशिष्ट हो उठता है। साहित्य में व्यक्त समाज का प्रत्येक सफल चरित्र समाज को पहले से कुछ बड़ा बना देता है। दरअसल, रचनाकार की प्रतिभा (व्यक्तित्व) किसी परंपरा या ढाँचे से निर्मित नहीं होती है, वह निर्मित होती है समाज के उस अंतर्वस्तु से जिसे व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर महसूस करता है। विषमता बोध और उससे उबरने की पीड़ा ही व्यक्तित्व बोध निर्माण करती है।

प्रासंगिकता: "भारतीय समाज में साहित्य की सत्ता पर ध्यान दें तो जाहिर होगा कि बहुसंख्यक निरक्षर जनता के दैनिक जीवन की दुनिया से मुट्ठीभर मध्यवर्ग के बीच साहित्य की दुनिया का वही संबंध है जो लोक से परलोक का होता है।" मध्यकाल में संतों का मौखिक व लिखित साहित्य आम जनता के सामने था। अतः जनता रचना और रचनाकार से जुड़ा हुआ महसूस करता था। परन्तु "आज साहित्य में समाज तो वर्णित है लेकिन उसका निर्धारण आम आदमी के हाथों में नहीं है, वह कुछ पढ़े-लिखे हिन्दी रचनाकारों या विभागों के जिम्मे है, जो साहित्य के मठाधीश बने बैठे हैं। वे ही किसी रचना की विशिष्टता या कमी को तय करते हैं। ऐसे में आज साहित्य और समाज की अपेक्षा "साहित्य और पाठक की अधिक जरूरत है।" क्योंकि यह "साहित्य की सामाजिकता की पहचान के लिए पाठक समुदाय के बीच साहित्य की सत्ता और महत्ता के विवेचन की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत पाठक द्वारा कृति के अर्थ की पुनर्रचना पाठक पर प्रभाव और उसकी पतिक्रियाओं का विवेचन होता है।" यानि पाठक ही रचना और समाज के अंतःसंबंधों को

निर्धारित कर सकता है। अतः आज साहित्य और समाज के अंतःसंबंध की विवेचना अधिक प्रासंगिक हो गया है।

निष्कर्ष: भारतीय समाज में साहित्य का दर्शन जन्म से लेकर हर खुशी के मौके, तीज-त्योहारों ही नहीं मृत्यु तक के दुःखद गीतों में हो जाता है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता, ऐसा साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यों को प्रतिबिम्बित करता है। भारतीय समाज और साहित्य का गहरा संबंध है और दोनों एक दूसरे का पूरक है। समाज शरीर है तो साहित्य आत्मा। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है। साहित्यकार की वस्तुपरक दृष्टि जब जीवन जगत से साक्षात्कार करती है तो सर्वप्रथम उसका ध्यान उन अन्तःसंबंधों पर जाता है जिससे सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। अगर समाज में साहित्य की कोई भूमिका न हो तो उसकी जरूरत भी नहीं होगी। भूमिका के स्तर पर सामंती युग से कला और साहित्य की सीमित स्वतंत्रता के बजाय कलाकार और कृति के स्वतंत्र व्यक्तित्व की बात उठने लगती है। सामंती युग में जो लोक जीवन में रहने वाले कलाकार दरबार के रत्नों से अलग दिखाई देते हैं। पूंजीवादी युग में कलाकार के व्यक्तित्व की स्वतंत्रता एक सच्चाई और समस्या के रूप में सामने आयी है, यानि समाज में साहित्य की सत्ता और स्थिति का एक और पक्ष है। यह व्यापक सामाजिक ढाँचे से अनेक रूपों में जुड़ा होता है। वह सामाजिक प्रक्रिया के आर्थिक, राजनीतिक और विचार-धारात्मक व्यवहारों से प्रभावित होता है और उनको प्रभावित भी करता है।

लेखक के व्यक्तित्व के सामाजिक अंश का विकास तभी संभव है जब उन युगान्तकारी घटनाओं की प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर उन अनुभवों की संवेदना ग्रंथि को धारण करते हुए साहित्य में उसको खोलते हैं। मध्यकाल में कबीर, नानक, रैदास यह काम करते हैं। प्रेमशंकर ने लिखा है कि "रचना केवल स्वीकृति नहीं है, व्यापक अर्थ में वह एक निषेध भी है। समाज का द्वंद्व रचना के केन्द्र में होता है लेकिन सम्पूर्ण द्वंद्व को साहित्य में नहीं रखा जा सकता। लेखक अपने समय में समाज को चुनौती भी देते हैं, ललकारते भी है एक बेहतर समाज में प्रवेश के लिए।" अतः साहित्य में समाज मात्र अपने विवरणों में उपस्थित नहीं होता और रचना सूचनाओं भर से काम नहीं चल सकता। साहित्यकार का कर्तव्य बनता है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व-बन्धुत्व के सद्भाव के साथ हाशिये के आदमी के जीवन को ऊपर उठाने में सक्षम हो। साहित्यकार का कार्य मात्र कलम घिसना नहीं है बल्कि समाज के विकास में अपनी भूमिका का निर्वाह करना भी है। यह सोचने की बात है कि करोड़ों के इस देश में कुछ हजार ही साहित्यकार हैं। साहित्यकार होना प्राकृतिक वरदान है। इसीलिए कवि नीरज कहते हैं – "मानव होना भाग्य है, जबकि कवि होना सौभाग्य है।"

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य: रचना और विचार—नंद दुलारे वाजपेयी, पृ. सं. 20
2. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका—मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा साहित्य अकादमी (चंडीगढ़), प्र. सं. 1989, पृ. सं. 13, 57
3. साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन निर्मला जैन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि. वि., पृ. सं. 5, 24, 25
4. इतिहास और आलोचना — डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1957, पृ. सं. 3, 37, 42, 44

5. साहित्य के समाजशास्त्रीय संदर्भ — सं. डॉ. विश्वम्भर दयाल गुप्त, सीता प्रकाशन, हाथरस, 1987 पृ. सं. 21, 24, 25, 147
6. मुक्तिबोध रचनावली, भाग 4 — सं. नैमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन, 1980, पृ. सं. 19, 26
7. साहित्य से संवाद — प्रो. गोपेश्वर सिंह, मेधाबुक्स, 2005, पृ. सं. 21
8. भारतीय समाज : तात्विक और ऐतिहासिक विवेचन — गोविन्द चन्द पांडे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. 1993, पृ. सं. 29